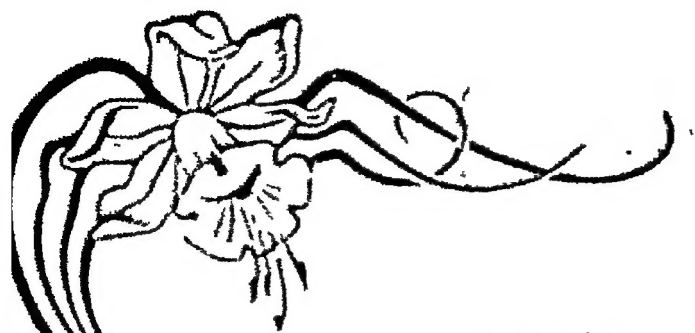


प्रकाशक—

‘चाँद’ कार्यालय,
इलाहाबाद

मुद्रक—

आर० सहगल,
फाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कोटेज,
इलाहाबाद



उपहार





पहला परिच्छेद



तो बाबू उदयभानुलाल के परिवार में बीसों ही प्राणी थे; कोई ममेरा भाई था, कोई फुफेरा; कोई भाज्जा था, कोई भतीजा; लेकिन यहाँ हमें उनसे कोई प्रयोजन नहीं । वह अच्छे वकील थे, लक्ष्मी प्रसन्न थी; और कुटुम्ब के दरिद्र प्राणियों को आश्रय देना उनका कर्तव्य ही था । हमारा सम्बन्ध तो लोग उनकी दोनों कन्याओं से है, जिनमें बड़ी का नाम निर्मला; और छोटी का कृष्णा था । अभी कल तक दोनों साथ-साथ गुड़िया भी थीं । निर्मला का पन्द्रहवाँ साल था, कृष्णा का दसवाँ; फिर

भी उनके स्वभाव में कोई विशेष अन्तर न था। दोनों चञ्चल, खिलाड़िन और सैर-तमाशे पर जान देती थीं। दोनों गुड़ियों का धूम-धाम से ब्याह करती थीं, सदा काम से जी चुराती थीं। माँ पुकारती रहती थी; पर दोनों कोठे पर छिपी बैठी रहती थीं कि न जाने किस काम के लिए बुलाती हैं। दोनों अपने भाइयों से लड़ती थीं, नौकरों को डाटती थीं; और बाजे की आवाज सुनते ही द्वार पर आकर खड़ी हो जाती थीं; पर आज एकाएक एक ऐसी बात हो गई है, जिसने बड़ी को बड़ी और छोटी को छोटी बना दिया है। कृष्णा वही है; पर निर्मला गम्भीर, एकान्तप्रिय और लज्जाशीला हो गई है। इधर महीनों से बाबू उदयभानुलाल निर्मला के विवाह की बातचीत कर रहे थे। आज उनकी मिहनत ठिकाने लगी है। बाबू भालचन्द्र सिन्हा के ज्येष्ठ पुत्र भुवनमोहन सिन्हा से बात पक्की हो गई है। वर के पिता ने कह दिया है कि आप की खुशी हो दहेज दें या न दें, मुझे इसकी परवाह नहीं; हाँ, बारात में जो लोग जायें उनका आदर-सत्कार अच्छी तरह होना चाहिए, जिसमें मेरी और आपकी जग-हँसाई न हो। बाबू उदयभानुलाल थे तो बकील; पर सञ्चय करना न जानते थे। दहेज उनके सामने कठिन समस्या थी। इसलिए जब वर के पिता ने स्वयं कह दिया कि मुझे दहेज की परवाह नहीं, तो मान्ने उन्हें आँखें मिल गईं। डरते थे, न जाने किस-किस के केवल फैलाना पड़े; दो-तीन महाजनों को ठीक कर रक्खा और अनुमान था कि हाथ रोकने पर भी बीस हज़ार

स्वर्च न होंगे। यह आश्वासन पाकर वे खुशी के मारे फूले न समाए !

इसी सूचना ने अज्ञात बालिका को मुँह ढाँप कर एक कोने में विठा रक्खा है। उसके हृदय में एक विचित्र शङ्का समा गई है, रोम-रोम में एक अज्ञात भय का सञ्चार हो गया है—न जाने क्या होगा ? उसके मन में वे उमङ्गें नहीं हैं, जो युवतियों की आँखों में तिरछी चितवन बन कर, ओठों पर मधुर हास्य बन कर; और अङ्गों में आलस्य बन कर प्रकट होती हैं। नहीं, वहाँ अभिलाषाएँ नहीं हैं; वहाँ केवल शङ्काएँ, चिन्ताएँ और भीरु कल्पनाएँ हैं। यौवन का अभी तक पूर्ण प्रकाश नहीं हुआ है !

कृष्णा कुछ-कुछ जानती है, कुछ-कुछ नहीं जानती। जानती है, बहिन को अच्छे-अच्छे गहने मिलेंगे, द्वार पर बाजे बजेंगे, मेहमान आएँगे, नाच होगा—यह जान कर प्रसन्न है; और यह भी जानती है कि बहिन सबके गले मिल कर रोएगी, यहाँ से रो-धो कर विदा हो जायगी, मैं अकेली रह जाऊँगी ॥ यह जान कर दुखी है; पर यह नहीं जानती कि यह सब किसलिए हो रहा है, माता जी और पिता जी क्यों बहिन को घर से निकालने को इतने उत्सुक हो रहे हैं। बहिन ने तो किसी को कुछ नहीं कहा, किसी से लड़ाई नहीं की; क्या इसी तरह एक दिन मुझे भी लोग निकाल देंगे ? मैं भी इसी तरह कोने में बैठ कर रोऊँगी; और किसी को मुझ पर दया न आएगी ? इसलिए वह भयभीत भी है।

सन्ध्या का समय था, निर्मला छत पर जाकर अकेली बैठी आकाश की ओर तृषित नेत्रों से ताक रही थी। ऐसा मन होता था कि पङ्क होते तो वह उड़ जाती; और इन सारी भङ्गमटों से छूट जाती। इस समय बहुधा दोनों बहिनें कहीं खैर करने जाया करती थीं। बग्घी खाली न होती, तो बग्घीचे ही में टहला करतीं। इसलिए कृष्णा उसे खोजती फिरती थी। जब कहीं न पाया, तो छत पर आई; और उसे देखते ही हँस कर बोली—तुम यहाँ आकर छिपी बैठी हो; और मैं तुम्हें ढूँढ़ती फिरती हूँ। चलो, बग्घी तैयार करा आई हूँ !

निर्मला ने उदासीन भाव से कहा—तू जा, मैं न जाऊँगी।

कृष्णा—नहीं, मेरी अच्छी दीदी; आज जरूर चलो। देखो, कैसी ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही है।

निर्मला—मेरा मन नहीं चाहता, तू चली जा।

कृष्णा की आँखें डबडबा आईं। काँपती हुई आवाज से बोली—आज तुम क्यों नहीं चलतीं? मुझसे क्यों नहीं बोलतीं? क्यों इधर-उधर छिपी-छिपी फिरती हो? मेरा जी अकेले बैठे-बैठे घबराता है। तुम न चलोगी, तो मैं भी न जाऊँगी। यहीं तुम्हारे साथ बैठी रहूँगी।

निर्मला—और जब मैं चली जाऊँगी, तब क्या करोगी? तब किसके साथ खेलेगी, किसके साथ घूमने जायगी; बता ?

कृष्णा—मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। अकेले मुझसे यहाँ न रहा जायगा।

निर्मला मुस्करा कर बोली—तुम्हें अम्माँ न जाने देंगी ।

कृष्णा—तो मैं भी तुम्हें न जाने दूँगी । तुम अम्माँ से कह क्यों नहीं देती कि मैं न जाऊँगी ?

निर्मला—कह तो रही हूँ, कोई सुनता है ?

कृष्णा—तो क्या यह तुम्हारा घर नहीं है ?

निर्मला—नहीं; मेरा घर होता तो कोई क्यों जबरदस्ती निकाल देता ।

कृष्णा—इसी तरह किसी दिन मैं भी निकाल दी जाऊँगी ?

निर्मला—और नहीं क्या तू बैठी रहेगी ? हम लड़कियाँ हैं, हमारा घर कहीं नहीं होता ।

कृष्णा—चन्दर भी निकाल दिया जायगा ?

निर्मला—चन्दर तो लड़का है; उसे कौन निकालेगा ?

कृष्णा—तो लड़कियाँ बहुत खराब होती होंगी ?

निर्मला—खराब न होतीं; तो घर से भगाई क्यों जातीं ।

कृष्णा—चन्दर इतना बदमाश है, उसे कोई नहीं भगाता । हम तुम तो कोई बदमाशी भी नहीं करतीं ।

एकाएक चन्दर धम-धम करता हुआ छत पर आ पहुँचा; और निर्मला को देख कर बोला—अच्छा ! आप यहाँ बैठी हैं । ओहो ! अब तो बाजे बजेंगे, दीदी दूल्हन बनेंगी, पालकी पर चढ़ेंगी, ओहो ! ओहो !!

चन्दर का पूरा नाम चन्द्रभानु सिन्हा था । निर्मला से तीन साल छोटा; और कृष्णा से दो साल बड़ा था ।

निर्मला

निर्मला—चन्द्र ! मुझे चिढ़ाओगे, तो अभी जाकर अम्माँ से दूँगी ।

चन्द्र—तो चिढ़ती क्यों हो ? तुम भी बाजे सुनना । ओहो, हो ! अब आप दूल्हन बनेंगी ! क्यों किशानी, तू बाजे सुनेगी न ? वैसे बाजे तूने कभी न सुने होंगे ।

कृष्णा—क्या बैण्ड से भी अच्छे होंगे ?

चन्द्र—हाँ-हाँ, बैण्ड से भी अच्छे, हज़ार गुने अच्छे, लाख गुने अच्छे । तुम जानो क्या ? एक बैण्ड सुन लिया, तो समझने लगीं, उससे अच्छे बाजे ही नहीं होते । बाजे बजाने वाले लाल-लाल बर्दियाँ और काली-काली टोपियाँ पहने होंगे । ऐसे खूबसूरत माल्हम होंगे कि तुमसे क्या कहूँ । आतशबाजियाँ भी होंगी; हवाइयाँ आसमान में उड़ जायँगी; और वहाँ तारों में लगेंगी तो लाल, पीले, हरे, नीले तारे टूट-टूट कर गिरेंगे । बड़ा मज़ा आएगा ।

कृष्णा—और क्या-क्या होगा चन्द्र, बता दे मेरे भैया !

चन्द्र—मेरे साथ घूमने चल, तो रास्ते में सारी बातें बता दूँ । ऐसे-ऐसे तमाशे होंगे कि देख कर तेरी आँखें खुल जायँगी । हवा में उड़ती हुई परियाँ होंगी; सचमुच की परियाँ ।

कृष्णा—अच्छा चलो; लेकिन न बताओगे तो मारूँगी ।

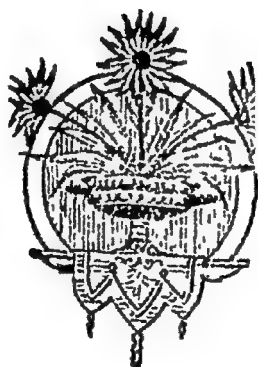
चन्द्रभानु और कृष्णा चले गए; पर निर्मला अकेली बैठी रह गई । कृष्णा के चले जाने से इस समय उसे बड़ा चोम हुआ । कृष्णा जिसे वह प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, आज इतनी

निठुर हो गई ! अकेली छोड़ कर चली गई ! बात कोई न थी; लेकिन दुखी हृदय दुखती हुई आँख है, जिसमें हवा से भी पीड़ा होती है। निर्मला बड़ी देर तक बैठी रोती रही। भाई-बहिन, माता-पिता सभी इसी भाँति मुझे भूल जायँगे, सब की आँखें फिर जायँगी ! फिर शायद इन्हें देखने को भी तरस जाऊँ !

बारा में फूल खिले हुए थे। मीठी-मीठी सुगन्ध आ रही थी। चैत की शीतल, मन्द समीर चल रही थी। आकाश में तारे छिटके हुए थे। निर्मला इन्हीं शोकमय विचारों में पड़ी-पड़ी सो गई; और आँख लगते ही उसका मन स्वप्न-देश में विचरने लगा। क्या देखती है कि सामने एक नदी लहरें मार रही है; और वह नदी के किनारे नाव की वाट देख रही है। सन्ध्या का समय है। अँधेरा किसी भयङ्कर जन्तु की भाँति बढ़ता चला आता है। वह घोर चिन्ता में पड़ी हुई है कि कैसे वह नदी पार होगी; कैसे घर पहुँचूँगी। रो रही है कि कहीं रात न हो जाय, नहीं तो मैं अकेली यहाँ कैसे रहूँगी। एकाएक उसे एक सुन्दर नौका घाट की ओर आती दिखाई देती है। वह खुशी से उछल पड़ती है; और ज्योंही नाव घाट पर आती है, वह उस पर चढ़ने के लिए बढ़ती है; लेकिन ज्योंही नाव के पटरे पर पैर रखना चाहती है, उसका मल्लाह बोल उठता है—तेरे लिए यहाँ जगह नहीं है। वह मल्लाह की खुशामद करती है, उसके पैरों पड़ती है, रोती है; लेकिन वह यह कहे जाता है—तेरे लिए यहाँ जगह नहीं है।

एक क्षण में नाव खुल जाती है। वह चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगती है। नदी के निर्जन तट पर रात भर कैसे रहेगी, यह सोच, वह नदी में कूद कर उस नाव को पकड़ना चाहती है कि इतने में कहीं से आवाज़ आती है—ठहरो-ठहरो, नदी गहरी है, डूब जाओगी। वह नाव तुम्हारे लिए नहीं है, मैं आता हूँ; मेरी नाव पर बैठ जाओ, मैं उस पार पहुँचा दूँगा। वह भयभीत होकर इधर-उधर देखती है कि यह आवाज़ कहाँ से आई। थोड़ी देर के बाद एक छोटी-सी डोंगी आती दिखाई देती है। उसमें न पाल है, न पतवार; और न मस्तूल। पेंदा फटा हुआ है, तख्ते टूटे हुए, नाव में पानी भरा हुआ है; और एक आदमी उसमें से पानी उलीच रहा है। वह उससे कहती है, यह तो टूटी हुई है, यह कैसे पार लगेगी? मल्लाह कहता है—तुम्हारे लिए यही भेजी गई है, आकर बैठ जाओ। वह एक क्षण सोचती है—इसमें बैठूँ या न बैठूँ। अन्त में वह निश्चय करती है, बैठ जाऊँ। यहाँ अकेली पड़ी रहने से नाव में बैठ जाना फिर भी अच्छा है। किसी भयङ्कर जन्तु के पेट में जाने से तो यही अच्छा है कि नदी में डूब जाऊँ। कौन जाने, नाव पार पहुँच ही जाय; यह सोच कर वह प्राणों को मुट्ठी में लिए हुए नाव पर बैठ जाती है। कुछ देर तक नाव डगमगाती हुई चलती है; लेकिन प्रति क्षण उसमें पानी भरता जाता है। वह भी मल्लाह के साथ दोनों हाथों से पानी उलीचने लगती है, यहाँ तक कि उसके हाथ रह जाते हैं; पर पानी बढ़ता ही चला जाता है।

“आखिर नाव चक्कर खाने लगती है; मालूम होता है—अब डूबी, अब डूबी। तब वह किसी अदृश्य सहारे के लिए दोनों हाथ फैलाती है, नाव नीचे से खिसक जाती है; और उसके पैर उखड़ जाते हैं। वह जोर से चिल्लाई; और चिल्लाते ही उसकी आँखें खुल गईं। देखा तो माता सामने खड़ी उसका कन्धा पकड़ कर हिला रही थीं।



दूसरा परिच्छेद



बू उदयभानुलाल का मकान बाज़ार में बना हुआ है। बरामदे में सुनार के हथौड़े, और कमरे में दर्जी की सुइयाँ चल रही हैं। सामने नीम के नीचे बढ़ई चारपाइयाँ बना रहा है। खपरैल में हलवाई के लिए भट्ठा खोदा गया है। मेहमानों के लिए अलग एक मकान ठीक

किया गया है। यह प्रबन्ध किया जा रहा है कि हरेक मेहमान के लिए एक-एक चारपाई, एक-एक कुर्सी और एक-एक मेज हो। हर तीन मेहमानों के लिए एक-एक कहार रखने की तजवीज़ हो रही है। अभी बारात आने में एक महीने की देर है; लेकिन तैयारियाँ अभी से हो रही हैं। बारातियों का ऐसा सत्कार किया जाय कि किसी को जबान हिलाने का मौक़ा न मिले। वे लोग भी याद करें कि किसी के यहाँ बारात में गए थे। एक पूरा मकान बर्तनों से भरा हुआ है। चाय के सेट हैं, नाश्ते की

तश्तरियाँ, थाल, लोटे, गिलास ! जो लोग नित्य खाद पर पड़े हुक्का पीते रहते थे, बड़ी तत्परता से काम में लगे हुए हैं। अपनी उपयोगिता को सिद्ध करने का ऐसा अच्छा अवसर उन्हें फिर बहुत दिनों के बाद मिलेगा। जहाँ एक आदमी को जाना होता है, पाँच दौड़ते हैं। काम कम होता है, हुल्लड़ अधिक। ज़रा-ज़रा सी बात पर घण्टों तर्क-वितर्क होता है; और अन्त में वकील साहब को आकर निश्चय करना पड़ता है। एक कहता है, यह घी खराब है। दूसरा कहता है, इससे अच्छा बाज़ार में मिल जाय, तो टाँग की राह निकल जाऊँ। तीसरा कहता है, इसमें तो हीक आती है। चौथा कहता है, तुम्हारी नाक ही सड़ गई है, तुम क्या जानो घी किसे कहते हैं। जब से यहाँ आए हो, घी मिलने लगा है; नहीं तो घी के दर्शन भी न होते थे। इस पर तकरार बढ़ जाती है; और वकील साहब को भगड़ा चुकाना पड़ता है।

रात के नौ बजे थे। उदयभानुलाल अन्दर बैठे हुए खर्च का तख्मीना लगा रहे थे। वह प्रायः रोज़ ही तख्मीना लगाते थे; पर रोज़ ही उसमें कुछ न कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन करना पड़ता था। सामने कल्याणी भौहँ सिकोड़े हुए खड़ी थी। बाबू साहब ने बड़ी देर के बाद सिर उठाया; और बोले—दस हज़ार से कम नहीं होता, बल्कि शायद और बढ़ जाय।

कल्याणी—दस दिन में पाँच हज़ार से दस हज़ार हुए। एक महीने में तो शायद एक लाख की नौबत आ जाय !

उदयभानु—क्या करूँ, जग-हँसाई भी तो अच्छी नहीं लगती। कोई शिकायत हुई, तो लोग कहेंगे नाम बड़े, दर्शन थोड़े। फिर जब वह मुझसे दहेज एक पाई नहीं लेते, तो मेरा भी तो यह कर्तव्य है कि मेहमानों के आदर-सत्कार में कोई बात उठा न रखूँ !

कल्याणी—जब से ब्रह्मा ने सृष्टि रची, तब से आज तक कभी बारातियों को कोई प्रसन्न नहीं कर सका। उन्हें दोष निकालने और निन्दा करने का कोई न कोई अवसर मिल ही जाता है। जिसे अपने घर सूखी रोटियाँ भी मुयस्सर नहीं, वह भी बारात में जाकर नानाशाह बन बैठता है। तेल खुशबूदार नहीं, साबुन टके सेर का जाने कहाँ से बटोर लाए, कहार बात नहीं सुनते, लालटेनें धुआँ देती हैं, कुर्सियों में खटमल हैं, चारपाइयाँ ढीली हैं, जनवासे की जगह हवादार नहीं; ऐसी-ऐसी हजारों शिकायतें होती रहती हैं। उन्हें आप कहाँ तक रोकिएगा ? अगर यह मौका न मिला, तो और कोई ऐब निकाल लिए जायँगे। भई, यह तेल तो रण्डियों के लगाने लायक है, हमें तो सादा तेल चाहिए; जनाब यह साबुन नहीं भेजा है, अपनी अमीरी की शान दिखाई है; मानो हमने साबुन देखा ही नहीं। ये कहार नहीं, यमदूत हैं; जब देखिए सिर पर सवार; लालटेनें ऐसी भेजी हैं कि आँखें चमकने लगती हैं; अगर दस-पाँच दिन इस रोशनी में बैठना पड़े, तो आँखें फूट जायँ। जनवासा क्या है, अभागों का भाग्य है, जिस पर चारों तरफ से झोंके आते रहते हैं। मैं तो फिर यही कहूँगी कि बारातियों के नखरों का विचार ही छोड़ दो।

उदयभानु—तो आखिर तुम मुझे क्या करने कहती हो ?

कल्याणी—कह तो रही हूँ, पक्का इरादा कर लो कि पाँच हजार से अधिक न खर्च करेंगे । घर में तो टका है नहीं; कर्ज ही का भरोसा ठहरा, तो इतना कर्ज क्यों ले लो कि जिन्दगी में अदा न हो । आखिर मेरे और वच्चे भी तो हैं, उनके लिए भी तो कुछ चाहिए ।

उदयभानु—तो क्या आज मैं मरा जाता हूँ ?

कल्याणी—जीने-मरने का हाल कोई नहीं जानता ।

उदयभानु—तो तुम बैठी यही मनाया करती हो ?

कल्याणी—इसमें विगड़ने की तो कोई बात नहीं है । मरना एक दिन सभी को है । कोई यहाँ अमर होकर थोड़े ही आया है । आँखें बन्द कर लेने से तो होने वाली बात न टलेगी । रोज़ आँखों देखती हूँ, बाप का देहान्त हो जाता है, उसके वच्चे गली-गली ठोकरें खाते फिरते हैं । आदमी ऐसा काम ही क्यों करे ?

उदयभानु ने जल कर कहा—तो अब समझ लूँ कि मेरे मरने के दिन निकट आ गए, यह तुम्हारी भविष्यवाणी है । सुहाग से स्त्रियों का जी ऊबते नहीं सुना था, आज यह नई बात मालूम हुई ! रँडापे में भी कोई सुख होगा ही !!

कल्याणी—तुम से दुनिया की भी कोई बात कही जाती है, तो ज़हर उगलने लगते हो । इसीलिए न कि जानते हो इसे कहीं ठिकाना नहीं है—मेरी ही रोटियों पर पड़ी हुई है; या और

कुछ ? जहाँ कोई बात कही, बस सिर हो गए; मानो मैं घर की लौंडी हूँ, मेरा केवल रोटी और कपड़े का नाता है। जितना ही मैं दबती हूँ, तुम और भी दबाते हो। मुत्तखोरे माल उड़ाएँ, कोई मुँह न खोले; शराब-क्रबाब में रुपये लुटें, कोई ज़बान न हिलाए। ये सारे काँटे मेरे बच्चों ही के सिर तो बोए जा रहे हैं !

उदयभानु—तो मैं क्या तुम्हारा गुलाम हूँ ?

कल्याणी—तो क्या मैं तुम्हारी लौंडी हूँ ?

उदयभानु—ऐसे मर्द और होंगे, जो औरतों के इशारों पर नाचते हैं।

कल्याणी—तो ऐसी स्त्रियाँ भी और होंगी, जो मर्दों की जूतियाँ सहा करती हैं।

उदयभानु—मैं कमा कर लाता हूँ; जैसे चाहूँ खर्च कर सकता हूँ। किसी को बोलने का अधिकार नहीं है।

कल्याणी—तो आप अपना घर सँभालिए। ऐसे घर को मेरा दूर ही से सलाम है, जहाँ मेरी कोई पूछ नहीं। घर में तुम्हारा जितना अधिकार है, उतना ही मेरा भी। इससे जौ भर भी कम नहीं। अगर तुम अपने मन के राजा हो, तो मैं भी अपने मन की रानी हूँ। तुम्हारा घर तुम्हें मुबारक रहे, मेरे लिए पेट की रोटियों की कमी नहीं है। तुम्हारे बच्चे हैं; मारो या जिलाओ। न आँखों से देखूँगी, न पीड़ा होगी। आँखें फूटीं, पीर गई !

उदयभानु—क्या तुम समझती हो कि तुम न सँभालोगी, तो

मेरा घर ही न सँभलेगा ? मैं अकेले ऐसे-ऐसे दस घर सँभाल सकता हूँ ।

कल्याणी—कौन ! अगर आज के महीनवें दिन मिट्टी में न मिल जाय, तो कहना कोई कहती थी ।

यह कहते-कहते कल्याणी का चेहरा तमतमा उठा । वह भ्रम कर उठी; और कमरे से द्वार की ओर चली । वकील साहब मुकदमों में तो खूब मीन-मेख निकालते थे ; लेकिन स्त्रियों के स्वभाव का उन्हें कुछ यों ही सा ज्ञान था । यही एक ऐसी विद्या है, जिसमें आदमी बूढ़ा होने पर भी कोरा रह जाता है । अगर अब भी वह नरम पड़ जाते; और कल्याणी का हाथ पकड़ कर बिठा लेते, तो शायद वह रुक जाती, लेकिन आप से यह तो न हो सका; उलटे चलते-चलाते एक और चर्का दिया ।

बोले—मैके का घमण्ड होगा ।

कल्याणी ने द्वार पर रुक कर पति की ओर लाल-लाल नेत्रों से देखा; और बफर कर बोली—मैके वाले मेरी तक्रदीर के साथी नहीं हैं; और न मैं इतनी नीच हूँ कि उनकी रोटियों पर जा पड़ूँ ।

उदयभानु—तब कहाँ जा रही हो ?

कल्याणी—तुम यह पूछने वाले कौन होते हो ? ईश्वर की सृष्टि में असंख्य प्राणियों के लिए जगह है, क्या मेरे ही लिए जगह नहीं है ?

यह कह कर कल्याणी कमरे के बाहर निकल गई । आँगन में

आकर उसने एक बार आकाश की ओर देखा, मानो तारागण को साक्षी दे रही है कि मैं इस घर से कितनी निर्दयता से निकाली जा रही हूँ। रात के ग्यारह बज गए थे। घर में सन्नाटा छा गया था, दोनों बेटों की चारपाई उसी के कमरे में रहती थी। वह अपने कमरे में आई, देखा चन्द्रभानु सोया है। सब से छोटा सूर्यभानु चारपाई पर से उठ बैठा है। माता को देखते ही वह बोला—तुम तहाँ दर्दतीं अम्माँ ? कल्याणी दूर हो खड़े-खड़े बोली—कहीं तो नहीं बेटा, तुम्हारे बाबू जी के पास गई थी।

सूर्य०—तुम तली दर्द, मुझे अतेले दर लदता ता। तुम त्यों तली दर्द तीं, बताओ ?

यह कह बच्चे ने गोद चढ़ने के लिए दोनों हाथ फैला दिए। कल्याणी अब अपने को न रोक सकी। मातृ-स्नेह के सुधा-प्रवाह से उसका सन्तप्त हृदय परिप्लावित हो गया। हृदय के कोमल पौधे, जो क्रोध के ताप से मुरझा गए थे, फिर हरे हो गए। आँखें सजल हो गईं। उसने बच्चे को गोद में उठा लिया; और उसे छाती से लगा कर बोली—तुमने मुझे पुकार क्यों न लिया; बेटा ?

सूर्य०—पुकालता तो ता, तुम छुनती ही न तीं। बताओ, अब तो तबी न दाओगी ?

कल्याणी—नहीं मैया, अब कभी न जाऊँगी।

यह कह कर कल्याणी सूर्यभानु को लेकर चारपाई पर लेटी। माँ के हृदय से लिपटते ही बालक निःशङ्क होकर सो गया। कल्याणी के मन में सङ्कल्प-विकल्प होने लगे। पति की बातें याद

आतीं, तो मन होता—घर को तिलाजली देकर चली जाऊँ; लेकिन बच्चों का मुँह देखती, तो वात्सल्य से चित्त गद्गद् हो जाता। बच्चों को किस पर छोड़ कर जाऊँ! मेरे इन लाल को कौन पालेगा, ये किसके होकर रहेंगे। कौन प्रातःकाल इन्हें दूध और हलवा खिलाएगा; कौन इनकी नींद सोएगा, इनकी नींद जागेगा? बेचारे कौड़ी के तीन हो जाएँगे। नहीं प्यारो, मैं तुम्हें छोड़ कर न जाऊँगी। तुम्हारे लिए सब कुछ सह लूँगी। निरादर-अपमान, जली-कटी, खोटी-खरी, घुड़की-भिड़की सब तुम्हारे लिए सहूँगी।

कल्याणी तो बच्चे को लेकर लेटी; पर बाबू साहब को नींद न आई। उन्हें चोट करने वाली बातें बड़ी मुश्किल से भूलती थीं। उफ! यह मिजाज! मानो मैं ही इनकी स्त्री हूँ! बात मुँह से निकालनी मुश्किल है। अब मैं इनका गुलाम होकर रहूँ। घर में अकेली यह रहें; और बाकी जितने अपने-बेगाने हैं, सब निकाल दिए जायँ। जला करती हैं। मनाती हैं कि यह किसी तरह मरे, तो मैं अकेली आराम करूँ। दिल की बात मुँह से निकल ही आती है, चाहे कोई कितना ही छिपाए। कई दिन से देख रहा हूँ, ऐसी जली-कटी सुनाया करती हैं। मैके का घमण्ड होगा; लेकिन वहाँ कोई बात भी न पूछेगा। अभी सब आव भगत करते हैं। जब जाकर सिर पड़ जायँगी, तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा। रोती हुई आएँगी। बाहरे घमण्ड, सोचती हैं—मैं ही यह गृहस्थी चलाती हूँ। अभी चार दिन को कहीं चला जाऊँ, तो मालूम हो। तब देखूँ क्या करती हैं? वस, चार दिन ही मैं तो मालूम हो जायगा। सारी शेखी किरकिरी

हो जायगी। एक बार इनका घमण्ड तोड़ ही दूँ, ज़रा वैधव्य का मज़ा भी चखा दूँ। न जाने इनकी हिम्मत कैसे पड़ती है कि मुझे यों कोसने लगती हैं ? मालूम होता है प्रेम इन्हें छू नहीं गया या समझती हैं यह घर से इतना चिमटा हुआ है; कि इसे चाहे जितना कोसूँ, टलने का नाम न लेगा। यही बात है; पर यहाँ संसार से चिपटने वाले जीव नहीं हैं। जहन्नुम में जाय वह घर; जहाँ ऐसे प्राणियों से पाला पड़े। घर है या नरक ! आदमी बाहर से थका-माँदा आता है, तो घर में उसे आराम मिलता है। यहाँ आराम के बदले कोसने सुनने पड़ते हैं। मेरी मृत्यु के लिए व्रत रक्खे जाते हैं। यह है पचीस बरस के दाम्पत्य-जीवन का अन्त ! बस चल ही दूँ। जब देख लूँगा कि इनका सारा घमण्ड धूल में मिल गया; और मिज़ाज ठण्डा हो गया, तो लौट आऊँगा। चार-पाँच दिन काफ़ी होंगे। ले, तुम भी क्या याद करोगी कि किसी से पाला पड़ा था।

यही सोचते हुए बाबू साहब उठे, रेशमी चादर गले में डाली, कुछ रुपये लिए, अपना कार्ड निकाल कर एक दूसरे कुर्ते के जेब में रक्खा, छड़ी उठाई; और चुपके से बाहर निकले। सब नौकर नींद में मस्त थे। कुत्ता आहट पाकर चौंक पड़ा; और उनके साथ हो लिया।

पर यह कौन जानता था कि यह सारी लीला विधि के हाथों रची जा रही है। जीवन-रङ्गशाला का वह निर्दय सूत्रधार किसी अगम्य, गुप्त स्थान पर बैठा हुआ अपनी जटिल क्रूर-क्रीड़ा दिखा रहा है ? यह कौन जानता था कि नकल असल होने जा रही है, अभिनय सत्य का रूप ग्रहण करने वाला है ?

निशा ने इन्दु को परास्त करके अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था। उसकी पैशाचिक सेना ने प्रकृति पर आतङ्क जमा रक्खा था ! सद्गुणियाँ मुँह छिपाए पड़ी थीं; और कुवृत्तियाँ विजय-गर्व से इठलाती फिरती थीं। वन में वन्य-जन्तु शिकार की खोज में विचर रहे थे; और नगरों में नर-पिशाच गलियों में मँडलाते फिरते थे।

बाबू उदयभानुलाल लपके हुए गङ्गा की ओर चले जा रहे थे। उन्होंने अपना कुर्ता घाट के किनारे रख कर पाँच दिनों के लिए मिर्जापूर चले जाने का निश्चय किया था। उनके कपड़े देख कर लोगों को उनके डूब जाने का विश्वास हो जायगा। कार्ड कुर्ते की जेब में था। पता लगने में कोई दिक्कत न हो सकती थी। दम के दम में सारे शहर में खबर मशहूर हो जायगी। आठ बजते-बजते तो मेरे द्वार पर सारा शहर जमा हो जायगा, तब देखूँ देवी जी क्या करती हैं ?

यही सोचते हुए बाबू साहब गलियों में चले जा रहे थे, सहसा उन्हें अपने पीछे किसी दूसरे आदमी के आने की आहट मिली; समझे कोई होगा। आगे बढ़े; लेकिन जिस गली में वह मुड़ते, उसी तरफ वह आदमी भी मुड़ता था। तब तो बाबू साहब को आशङ्का हुई कि यह आदमी मेरा पीछा कर रहा है। ऐसा आभास हुआ कि इसकी नीयत साफ नहीं है। उन्होंने तुरन्त जेबी लालटेन निकाली; और उसके प्रकाश में उस आदमी को देखा। एक बलिष्ठ मनुष्य कन्धे पर लाठी रक्खे चला आता था। बाबू साहब उसे देखते ही चौंक पड़े। यह शहर का छटा हुआ बदमाश था। तीन साल पहले उस पर डाके का अभियोग चला

था । उदयभानु ने उस मुकदमे में सरकार की ओर से पैरवी की थी; और इस बदमाश को तीन साल की सज़ा दिलाई थी । तभी से वह इनके खून का प्यासा हो रहा था । कल ही वह छूट कर आया था । आज दैवात् बाबू साहब अकेले रात को दिखाई दिए, तो उसने सोचा यह इनसे दाँव चुकाने का अच्छा मौक़ा है । ऐसा मौक़ा शायद ही फिर कभी मिले । तुरन्त पीछे हो लिया; और बार करने के घात ही में था कि बाबू साहब ने जेबी लालटेन जलाई । बदमाश ज़रा ठिठक कर बोला—क्यों बाबू जी, पहचानते हो न ? मैं हूँ मतई ।

बाबू साहब ने डपट कर कहा—तुम मेरे पीछे-पीछे क्यों आ रहे हो ?

मतई—क्यों, किसी को रास्ता चलने की मनाही है । यह गली तुम्हारे बाप की है ?

बाबू साहब जवानी में कुश्ती लड़े थे, अब भी हट-पुट आदमी थे । दिल के भी कच्चे न थे । छड़ी सँभाल कर बोले—अभी शायद मन नहीं भरा । अब की सात साल को जाओगे ।

मतई—मैं सात साल को जाऊँ या चौदह साल को; पर तुम्हें जीता न छोड़ूँगा । हाँ, अगर तुम मेरे पैरों पर गिर कर क़सम खाओ कि अब किसी की सज़ा न कराऊँगा, तो छोड़ दूँ । बोलो मञ्जूर है ?

उदयभानु—तेरी शामत तो नहीं आई है ?

मतई—शामत मेरी नहीं आई, तुम्हारी आई है । बोलो खाते हो क़सम—एक !

उदयभानु—तुम हटते हो कि मैं पुलीसमैन को बुलाऊँ ?

मतई—दो !

उदयभानु—(गरज कर) हट जा बदमाश सामने से ।

मतई—तीन !

मुँह से 'तीन' का शब्द निकलते ही बाबू साहब के सिर पर लाठी का ऐसा तुला हुआ हाथ पड़ा कि वह अचेत होकर ज़मीन पर गिर पड़े । मुँह से केवल इतना ही निकला—हाय ! मार डाला ! मतई ने समीप आकर देखा, तो सिर फट गया था; और खून की धार निकल रही थी । नाड़ी का कहीं पता न था । समझ गया कि काम तमाम हो गया । उसने कलाई से सोने की घड़ी खोल ली, कुर्ते से सोने के बटन निकाल लिए, उँगली से अँगूठी उतारी और अपनी राह चला गया; मानो कुछ हुआ ही नहीं । हाँ, इतनी दया की कि लाश रास्ते से घसीट कर किनारे डाल दी । हाय ! बेचारे घर से क्या सोच कर चले थे; और क्या हो गया, जीवन ! तुझसे ज्यादाह असार भी दुनिया में कोई वस्तु है ? क्या वह उस दीपक की भाँति ही क्षणभङ्गुर नहीं है, जो हवा के एक झोंके से बुझ जाता है ? पानी के उस बुलबुले को देखते हो; लेकिन उसे टूटते भी कुछ देर लगती है ; जीवन में उतना सार भी नहीं । साँस का भरोसा ही क्या ? और इसी नश्वरता पर हम अभिलाषाओं के कितने विशाल भवन बनाते हैं ! नहीं जानते नीचे जाने वाली साँस ऊपर आएगी या नहीं; पर सोचते इतनी दूर की हैं, मानो हम अमर हैं ।



सासरा परिच्छेद



धवा का विलाप और अनार्यों का राना सुना कर हम पाठकों का दिल न दुखाएँगे। जिसके ऊपर पड़ती है, वह रोता है, विलाप करता है, पछाड़ें खाता है। यह कोई नई बात नहीं। हाँ, अगर आप चाहें तो कल्याणी के उस घोर मानसिक यातना का अनुमान कर

सकते हैं, जो उसे इस विचार से हो रहा था कि मैं ही अपने प्राण-धार की घातिका हूँ। वे वाक्य, जो क्रोध के आवेश में उसके असंयत मुख से निकले थे, अब उसके हृदय को वाणों की भंति छेद रहे थे। अगर पति ने उसकी गोद में कराह-कराह कर प्राण-त्याग किए होते, तो उसे सन्तोष होता कि मैंने उनके प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन किया। शोकाकुल हृदयों के लिए इससे ज्यादा सान्त्वना और किसी बात से नहीं होती। उसे इस विचार से कितना सन्तोष होता कि मेरे स्वामी मुझ से प्रसन्न गए, अन्तिम समय तक उनके हृदय में मेरा प्रेम बना रहा। कल्याणी को यह सन्तोष न था। वह सोचती—हा ! मेरी पचीस बरस की तपस्या

निष्फल हो गई। मैं अन्त समय अपने प्राणपति के प्रेम से वञ्चित हो गई। अगर मैं ने उन्हें ऐसे कठोर शब्द न कहे होते, तो वह कदापि रात को घर से बाहर न जाते। न जाने उनके मन में क्या-क्या विचार आए हों? उनके मनोभावों की कल्पना करके; और अपने अपराध को बढ़ा-बढ़ा कर वह आठों पहर कुढ़ती रहती थी। जिन वच्चों पर वह प्राण देती थी, अब उनकी सूरत से चिढ़ती। इन्हीं के कारण मुझे अपने स्वामी से रार मोल लेनी पड़ी। यही मेरे शत्रु हैं। जहाँ आठों पहर कचहरी सी लगी रहती थी, वहाँ अब खाक उड़ती थी। वह मेला ही उठ गया। जब खिलाने वाला ही न रहा, तो खाने वाले कैसे पड़े रहते। धीरे-धीरे एक महीने के अन्दर सभी भाञ्जे-भतीजे विदा हो गए। जिनको दावा था कि हम पानी की जगह खून वहाने वालों में हैं, वह ऐसा सरपट भागे कि पीछे फिर कर भी न देखा। दुनिया ही दूसरी हो गई! जिन वच्चों को देख कर प्यार करने को जी चाहता था, उनके चेहरे पर अब मक्खियाँ भिनभिनाती थीं! न जाने वह कान्ति कहाँ चली गई?

शोक का आवेग कम हुआ, तो निर्मला के विवाह की समस्या उपस्थित हुई। कुछ लोगों की सलाह हुई कि; विवाह इस साल रोक दिया जाय, लेकिन कल्याणी ने कहा—इतनी तैयारियों के बाद विवाह को रोक देने से सब किया-धरा मिट्टी में मिल जायगा; और दूसरे साल फिर यही तैयारियाँ करनी पड़ेंगी, जिसकी कोई आशा न थी; विवाह कर ही देना अच्छा है। कुछ लेना-देना तो

है ही नहीं। बारातियों के सेवा-सत्कार का काफ़ी सामान हो ही चुका है, विलम्ब करने में हानि ही हानि है। अतएव महाशय भालचन्द्र को शोक-सूचना के साथ यह सन्देशा भी भेज दिया गया ! कल्याणी ने अपने पत्र में लिखा—इस अनाथिनी पर दया कीजिए; और डूबती हुई नाव को पार लगाइए ! स्वामी जी के मन में बड़ी-बड़ी कामनाएँ थीं; किन्तु ईश्वर को कुछ और ही मञ्जूर था। अब मेरी लाज आपके हाथ है। कन्या आप की हो चुकी। मैं आप लोगों की सेवा-सत्कार करने को अपना सौभाग्य समझती हूँ; लेकिन यदि इसमें कुछ कमी हो, कुछ त्रुटि पड़े, तो मेरी दशा का विचार करके क्षमा कीजिएगा। मुझे विश्वास है कि आप स्वयं इस अनाथिनी की निन्दा न होने देंगे; आदि।

कल्याणी ने यह पत्र डाक से न भेजा; बल्कि पुरोहित जी से कहा—आपको कष्ट तो होगा; पर आप स्वयं जाकर यह पत्र दीजिए और मेरी ओर से बहुत विनय के साथ कहिएगा कि जितने कम आदमी आएँ, उतना ही अच्छा। यहाँ कोई प्रबन्ध करने वाला नहीं है। पुरोहित मोटेराम यह सन्देशा लेकर तीसरे दिन लखनऊ जा पहुँचे।

सन्ध्या का समय था। बाबू भालचन्द्र दीवानखाने के सामने आराम कुर्सी पर नङ्ग-धिड़ङ्ग लेटे हुए हुक्का पी रहे थे। बहुत ही स्थूल, ऊँचे कद के आदमी थे। ऐसा मालूम होता था कि काला देव है, या कोई हबशी अफ्रीका से पकड़ कर आया है। सिर से पैर तक एक ही रङ्ग था—काला ! चेहरा इतना स्याह था कि

मालूम न होता था कि माथे का अन्त कहाँ है; और सिर का आरम्भ कहाँ। वस, कोयले की एक सजीव मूर्ति थी। आप को गर्मी बहुत सताती थी। दो आदमी खड़े पड़ा मल रहे थे; उस पर भी पसीने का तार बँधा हुआ था। आप आवकारी के विभाग में एक ऊँचे ओहदे पर थे; ५००) वेतन मिलता था, ठेकेदारों से खूब रिशवत लेते थे। ठेकेदार शराब के नाम पानी बेचें, चौबीसों घण्टे दूकान खुली रखें; आप को केवल खुश रखना काफी था। सारा क़ानून आप की खुशी थी। इतनी भयङ्कर मूर्ति थी कि चाँदनी रात में उन्हें देख कर सहसा लोग चौंक पड़ते थे—बालक और स्त्रियाँ ही नहीं; पुरुष तक सहम जाते थे। चाँदनी रात इसलिए कहा कि अँधेरी रात में तो उन्हें कोई देख ही न सकता था—श्यामता अन्धकार में विलीन हो जाती थी। केवल आँखों का रङ्ग लाल था। जैसे पक्का मुसलमान पाँच बार नमाज़ पढ़ता है, वैसे आप पाँच बार शराब पीते थे। मुक्त की शराब तो काज़ी को हलाल है; फिर आप तो शराब के अफ़सर ही थे, जितनी चाहें पिएँ; कोई हाथ पकड़ने वाला न था। जज़ प्यास लगती शराब पी लेते। जैसे कुछ रङ्गों में परस्पर सहानुभूति है, उसी तरह कुछ रङ्गों में परस्पर विरोध है। लालिमा के संयोग से कालिमा और भी भयङ्कर हो जाती है।

वांवू साहब ने पण्डित जी को देखते ही कुर्सी से उठ कर कहा—अख्वाह ! आप हैं। आइए, आइए। धन्य भाग; और कोई है? कहाँ चले गए सब के सब, भगडू, गुरदीन, छकौड़ी, भवानी, रामगुलाम; कोई है? क्या सब के सब मर गए? चलो

(आँखें पोंछकर) मेरा तो जैसा दाहिना हाथ ही कट गया । विश्वास मानिए, जब से यह खबर सुनी है, आँखों में आँधेरा सा आ गया है । खाने बैठता हूँ, तो कौर मुँह में नहीं जाता । उनकी सूरत आँखों के सामने खड़ी रहती है । मुँह जूठा करके उठ आता हूँ । किसी काम में दिल ही नहीं लगता । भाई के मरने का रज भी इससे कम ही होता । आदमी नहीं, हीरा था !

मोटे०—सरकार, नगर में अब ऐसा कोई रईस ही नहीं रहा ।

भाल०—मैं खूब जानता हूँ पण्डित जी, आप मुझसे क्या कहते हैं । ऐसा आदमी लाख-दो लाख में एक होता है । जितना मैं उनको जानता था, उतना दूसरा नहीं जान सकता । दो ही तीन बार की मुलाकात में उनका भक्त हो गया; और मरते दम तक रहूँगा । आप समझिन साहब से कह दीजिएगा, मुझे दिली रज है ।

मोटे०—आप से ऐसी ही आशा थी । आप जैसे सज्जनो के दर्शन दुर्लभ हैं । नहीं तो आज कौन बिना दहेज के पुत्र का विवाह करता है ।

भाल०—महाराज, दहेज की बातचीत ऐसे सत्यवादी पुरुषों से नहीं की जाती । उनसे तो सम्बन्ध हो जाना ही लाख रुपये के बराबर है । मैं इसी को अपना अहोभाग्य समझता हूँ । हा ! कितनी उदार आत्मा थी ? रुपये को तो उन्होंने कुछ समझा ही नहीं, तिनके के बराबर भी परवाह नहीं की । बुरा रिवाज है, बेहद

बुरा ! मेरा बस चले, तो दहेज लेने वालों और दहेज देने वालों दोनों ही को गोली मार दूँ। हाँ साहब, साफ़ गोली मार दूँ; फिर चाहे फाँसी ही क्यों न हो जाय। पूछो, आप लड़के का विवाह करते हैं कि उसे बेचते हैं ? अगर आप को लड़के की शादी में दिल खोल कर खर्च करने का अरमान है, तो शौक से खर्च कीजिए ; लेकिन जो कुछ कीजिए अपने बल पर। यह क्या कि कन्या के पिता का गला रेतिए। नीचता है, घोर नीचता। मेरा बस चले तो इन पाजियों को गोली मार दूँ !

मोटे०—धन्य हो सरकार, भगवान् ने आपको बड़ी बुद्धि दी है। यह धर्म का प्रताप है। मालकिन की इच्छा है कि विवाह का मुहूर्त वही रहे; और तो उन्होंने सारी बातें पत्र में लिख ही दी हैं। बस, अब आप ही उबारें, तो हम उबर सकते हैं। इस तरह तो बारात में जितने सज्जन जायेंगे उनकी सेवा-सत्कार हम करेंगे ही; लेकिन परिस्थिति अब बहुत बदल गई है सरकार, कोई करने-धरने वाला नहीं है। बस, ऐसी बात कीजिए कि वकील साहब के नाम पर बट्टा न लगे।

भालचन्द्र एक मिनिट तक आँखें बन्द किए बैठे रहे: फिर एक लम्बी साँस खींच कर बोले—ईश्वर को मञ्जूर ही न था कि वह लक्ष्मी मेरे घर आती; नहीं तो क्या यह वज्र गिरता ? सारे मन्सूबे खाक में मिल गए। फूला न समाता था कि वह शुभ अवसर निकट आ रहा है; पर क्या जानता था कि ईश्वर के दरबार में कुछ और षड्यन्त्र रचा जा रहा है। मरने वाले की याद ही

रुलाने के लिए काफी है। उसे देख कर तो ज़ख्म और भी हरा हो जायगा। उस दशा में न जाने क्या कर बैठूँ। इसे गुण समझिए चाहे दोष कि जिससे एक बार मेरी घनिष्टता हो गई, फिर उसकी याद चित्त से नहीं उतरती। अभी तो खैर इतना ही है कि उनकी सूरत आँखों के सामने नाचती रहती है; लेकिन वह कन्या घर में आ गई, तब तो मेरा जिन्दा रहना कठिन हो जायगा। सच मानिए, रोते-रोते मेरी आँखें फूट जायँगी। जानता हूँ, रोना-धोना व्यर्थ है। जो सर गया, वह लौट कर नहीं आ सकता। सब्र करने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है; लेकिन दिल से मजबूर हूँ। उस अनाथ बालिका को देख कर मेरा कलेजा फट जायगा।

मोटे०—ऐसा न कहिए सरकार! वकील साहब नहीं हैं तो क्या, आप तो हैं। अब आप ही उसके पिता तुल्य हैं। वह अब वकील साहब की कन्या नहीं, आपकी कन्या है। आपके हृदय के भाव तो कोई जानता नहीं; लोग समझेंगे वकील साहब के देहान्त हो जाने के कारण आप अपने वचन से फिर गए। इसमें आपकी बदनामी है। चित्त को समझाइए, और हँसी-खुशी कन्या का पाणिग्रहण करा लीजिए। हाथी मरे भी तो नौ लाख का। लाख विपत्ति पड़ी है; लेकिन मालकिन आप लोगों की सेवा-सत्कार करने में कोई बात उठा न रखेंगी।

बाबू साहब समझ गए कि पण्डित मोटेराम कोरे पोथी के ही पण्डित नहीं; वरन् व्यवहार-नीति में भी चतुर हैं। बोले—पण्डित जी,

हलक से कहता हूँ, मुझे उस लड़की से जितना प्रेम है, उतना अपनी लड़की से भी नहीं है; लेकिन जब ईश्वर को मञ्जूर ही नहीं है; तो मेरा क्या बस है ? यह मृत्यु एक प्रकार की अमङ्गल-सूचना है, जो विधाता की ओर से हमें मिली है। यह किसी आने वाली मुसीबत की आकाशवाणी है। विधाता स्पष्ट रीति से कह रहा है, यह विवाह मङ्गलमय न होगा। ऐसी दशा में आप ही सोचिए, यह संयोग कहाँ तक उचित है। आप तो विद्वान् आदमी हैं। सोचिए, जिस काम का आरम्भ ही अमङ्गल से हो, उसका अन्त मङ्गलमय हो सकता है ? नहीं, जान-बूझ कर मक्खी नहीं निगली जाती। समधिनि साहिबा से समझा कर कह दीजिएगा, मैं उनकी आज्ञा-पालन करने को तैयार हूँ; लेकिन इसका परिणाम अच्छा न होगा। स्वार्थ के वश होकर मैं अपने परम मित्र की सन्तान के साथ यह अन्याय नहीं कर सकता।

इस तर्क ने पण्डित जी को निरुत्तर कर दिया। वादी ने वह तीर छोड़ा था, जिसकी उनके पास कोई काट न थी। शत्रु ने उन्हीं के हथियार से उन पर वार किया था; और वह उसका प्रतिकार न कर सकते थे। वह अभी कोई जवाब सोच ही रहे थे कि बाबू साहब ने फिर नौकरों को पुकारना शुरू किया। अरे ! तुम सब फिर गायब हो गए; मगडू, छकौड़ी, भवानी, गुरदीन, रामगुलाम ! एक भी नहीं बोलता। सबके सब मर गए। पण्डित जी के वास्ते पानी-बानी की भी फिक्र है ? न जाने इन सबों को कोई कहाँ तक समझाए। अत्रल छू तक नहीं गई।

देख रहे हैं कि एक महाशय दूर से थके-माँदे चले आ रहे हैं; पर किसी को ज़रा भी परवाह नहीं। लाओ पानी-वानी रक्खो। पण्डित जी, आपके लिए शर्वत वनवाऊँ या फलहारी मिठाई मँगवा दूँ।

मोटेराम जी मिठाइयों के विषय में किसी प्रकार का बन्धन न स्वीकार करते थे। उनका सिद्धान्त था कि घृत से सभी वस्तुएँ पवित्र हो जाती हैं। रसगुल्ले और बेसन के लड्डू उन्हें बहुत प्रिय थे; पर शर्वत से उन्हें रुचि न थी। पानी से पेट भरना उनके नियम के विरुद्ध था। सकुचाते हुए बोले—शर्वत पीने की तो मुझे आदत नहीं, मिठाई खा लूँगा।

भाल०—फलहारी न ?

मोटे—इसका मुझे कोई विचार नहीं।

भाल०—है तो यही बात। छूतछात सब ढकोसला है। मैं स्वयं नहीं मानता। अरे, अभी तक कोई नहीं आया। छकौड़ी, भवानी, गुरदीन, रामगुलाम कोई तो बोले।

अब की भी वही वूढ़ा कहार खाँसता हुआ आकर खड़ा हो गया, और बोला—सरकार, मोर तलब दे दीन जाय। ऐसी नौकरी मोसे न होई। कहाँ लो दौरी, दौरत-दौरत गोड़ पिराय लगत हैं।

भाल०—काम कुछ करो या न करो; पर तलब पहले चाहिए। दिन भर पड़े-पड़े खाँसा करो, तलब तो तुम्हारी चढ़ ही रही है। जाकर बाज़ार से एक आने की कोई ताज़ी मिठाई ला। दौड़ता हुआ जा !

पढ़ लेती थीं। पहली ही पाँती पढ़ कर उनकी आँखें सजल हो गईं; और पत्र समाप्त हुआ तो उनकी आँखों से आँसू वह रहे थे। एक-एक शब्द करुणा के रस में डूबा हुआ था। एक-एक अक्षर से दीनता टपक रही थी। रंगीलीवाई की कठोरता पत्थर की नहीं, लाख की थी—जो एक ही आँच से पिघल जाता है। कल्याणी के करुणोत्पादक शब्दों ने उसके स्वार्थ-मण्डित हृदय को पिघला दिया। रुँधे हुए कण्ठ से बोली—अभी ब्राह्मण बैठा है न ?

मालचन्द्र पत्नी जी के आँसुओं को देख-देख कर सूखे जाते थे। अपने ऊपर झल्ला रहे थे कि मैंने नाहक यह खत इसे दिखाया। इसकी ज़रूरत ही क्या थी ? इतनी बड़ी भूल उनसे कभी न हुई थी। सन्दिग्ध भाव से बोले—शायद बैठा हो, मैं ने तो जाने को कह दिया था। रंगीली ने खिड़की से झाँक कर देखा। पण्डित मोटेराम जी बगुले की तरह ध्यान लगाए बाज़ार के रास्ते की ओर ताक रहे थे। लालसा से व्यग्र होकर कभी यह पहलू बदलते कभी वह पहलू। “एक आने की मिठाई” ने आशा की कमर तो पहले ही तोड़ दी थी। उसमें भी यह विलम्ब दारुण दशा थी। उन्हें बैठे देख कर रंगीलीवाई बोली—है; है, अभी है, जाकर कह दो; हम विवाह करेंगे, ज़रूर करेंगे। बेचारी बड़ी मुसीबत में है।

माल०—तुम कभी-कभी बच्चों की सी बातें करने लगती हो। अभी उसे कह आया हूँ कि मुझे विवाह करना मञ्जूर नहीं। एक सन्ध्या-चौड़ी भूमिका बाँधनी पड़ी। अब जाकर यह सन्देशा कहूँगा,

तो वह अपने दिल में क्या कहेगा, ज़रा सोचो तो । यह शादी-विवाह का मामला है । लड़कों का खेल नहीं है कि अभी एक बात तय की; और अभी पलट गए । भले आदमी की बात न हुई, दिल्लगी हुई !

रँगेली—अच्छा तुम अपने मुँह से न कहो, उस ब्राह्मण को मेरे पास भेज दो । मैं इस तरह समझा दूँगी कि तुम्हारी बात भी रह जाय, और मेरी भी । इसमें तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं है ! -

भाल०—तुम अपने सिवा सारी दुनिया को नादान समझती हो । तुम कहो या मैं कहूँ, बात एक ही है । जो बात तय हो गई, वह हो गई; अब मैं उसे फिर नहीं उठाना चाहता । तुम्हीं तो बार-बार कहती थीं कि मैं वहाँ न करूँगी । तुम्हारे ही कारण मुझे अपनी बात खोनी पड़ी । अब तुम फिर रङ्ग बदलती हो । यह तो मेरी छाती पर मूँग दलना है । आखिर तुम्हें कुछ तो मेरे मान-अपमान का विचार करना चाहिए ।

रँगेली—तो मुझे क्या मालूम था कि विधवा की दशा इतनी हीन हो गई है । तुम्हीं ने तो कहा था कि उसने पति की सारी सम्पत्ति छिपा रक्खी है; और अपनी गरीबी का ढोंग रच कर काम निकालना चाहती है । एक ही छटी हुई औरत है । तुमने जो कहा, वह मैंने मान लिया । भलाई करके बुराई करने में तो लज्जा और सङ्कोच है । बुरा करके भलाई करने में कोई सङ्कोच नहीं । अगर तुम हाँ कर आए होते; और मैं नहीं करने को

कहती, तो तुम्हारा सङ्कोच उचित होता । नहीं करने के वाद हों करने में तो और अपना बड़प्पन है ।

भाल०—तुम्हें बड़प्पन मालूम होता हो, मुझे तो लुच्चापन ही मालूम होता है । फिर तुमने यह कैसे मान लिया कि मैंने वकीलाइन के विषय में जो बात कही थी, वह झूठी थी । क्या यह पत्र देख कर ? तुम जैसे खुद सरल हो, वैसे ही दूसरों को भी सरल समझती हो ।

रंगीली—इस पत्र में बनावट नहीं मालूम होती । बनावट की बात दिल में चुभती नहीं । उसमें बनावट की गन्ध अवश्य रहती है ।

भाल०—बनावट की बात तो ऐसी चुभती है कि सच्ची बात उसके सामने बिलकुल फीकी मालूम होती है । यह किसी-कहानियाँ लिखने वाले, जिनका कितारें पढ़-पढ़कर तुम घण्टों रोती हो, क्या सच्ची बातें लिखते हैं ? सरासर झूठ का तूमार बाँधते हैं, यह भी एक कला है ।

रंगीली—क्यों जी, तुम मुझसे भी उड़ते हो, दाईं से पेट छिपाते हो ? मैं तुम्हारी बातें मान जाती हूँ, तो तुम समझते हो इसे चकमा दिया; पर मैं तुम्हारी एक-एक नस पहचानती हूँ । तुम अपना ऐब मेरे सिर मँढ़कर खुद वेदारा बनना चाहते हो । बोलो, कुछ झूठ कहती हूँ । जब वकील साहब जीते थे, तो तुमने सोचा था कि ठहराव की जरूरत ही क्या है, वह खुद ही जितना उचित समझेंगे दे देंगे, बल्कि बिना ठहराव के और

ज्यादा मिलने की आशा होगी। अब जो वकील साहब का देहान्त हो गया, तो तरह-तरह के हीले-हवाले करने लगे, यह भलमन्सी नहीं, छोटापन है। इसका इलजाम भी तुम्हारे ही सिर है। मैं अब शादी-ब्याह के नगीच न जाऊँगी। तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो। ढोंगी आदमियों से मुझे चिढ़ है। जो बात करो, सफाई से करो; बुरा हो या अच्छा। 'हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और' वाली नीति पर चलना तुम्हें शोभा नहीं देता। बोलो, अब भी वहाँ शादी करते हो या नहीं ?

भाल०—जब मैं बेईमान, दगाबाज और झूठा ठहरा, तो मुझ से पूछना ही क्या। मगर खूब पहचानती हो आदमियों को ! क्या कहना है, तुम्हारी इस सूझ-बूझ की बलैयाँ ले ले।

रंगीली—हो बड़े हयादार, अब भी नहीं शर्माते। ईमान से कहो, मैं ने बात ताड़ ली कि नहीं ?

भाल०—अजी जाओ, वह दूसरी औरतें होती हैं, जो मर्दों को पहचानती हैं। अब तक मैं भी यही समझता था कि औरतों की दृष्टि बड़ी सूक्ष्म होती है; पर आज वह विश्वास उठ गया, और महात्माओं ने औरतों के विषय में जो तत्त्व की बातें कही हैं, उनको मानना पड़ा।

रंगीली—जरा आईने में सूरत तो देख आओ, तुम्हें मेरी कसम है ! जरा देख लो, कितना भँपे हुए हो।

भाल०—सच कहना, कितना भँपा हुआ हूँ।

है। वकील साहब रहे ही नहीं, बुढ़िया के पास अब क्या होगा !!

रंगीली—तुम्हें ऐसी बातें मुँह से निकालते शर्म नहीं आती ?

भुवन—इसमें शर्म की कौन सी बात है। रुपये किसे काटते हैं। लाख रुपये तो लाख जन्म में भी न जमा कर पाऊँगा। इस साल पास भी हो गया, तो कम से कम पाँच साल तक रुपये की सूरत नज़र न आएगी। फिर सौ दो सौ रुपये महीने कमाने लगूँगा। पाँच-छः तक पहुँचते-पहुँचते उम्र के तीन भाग बीत जाँएंगे। रुपये जमा करने की नौबत ही न आएगी। दुनिया का कुछ मज़ा न उठा सकूँगा। किसी धनी की लड़की से शादी हो जाती, तो चैन से कटती। मैं ज्यादा नहीं चाहता, बस एक लाख नक़द हो। या फिर कोई ऐसी जायदाद वाली बेवा मिले, जिसकी एक ही लड़की हो।

रंगीली—चाहे औरत कैसी ही मिले ?

भुवन—धन सारे ऐबों को छिपा देगा। मुझे तो वह गालियाँ भी, सुनाए तो चूँ न करूँ। दुधारु गाय की लात किसे बुरी मालूम होती है ?

बाबू साहब ने प्रशंसा-सूचक भाव से कहा—हमें उन लोगों के साथ सहानुभूति है; और दुख है कि ईश्वर ने उन्हें विपत्ति में डाला, लेकिन बुद्धि से काम लेकर ही कोई निश्चय करना चाहिए। हम कितने ही फटे हालाँ जायँ, फिर भी अच्छी खासी बारात हो जायगी। वहाँ भोजन का ठिकाना भी नहीं। सिवा इसके कि लोग हँसें; और कोई नतीजा न निकलेगा।

रंगीली—तुम बाप-पूत दोनों एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हो। दोनों उस गरीब लड़की के गले पर छुरी फेरना चाहते हो !

भुवन—जो गरीब है, उसे गरीबों ही के यहाँ सम्बन्ध करना चाहिए। अपनी हैसियत से बढ़ कर।

रंगीली—चुप भी रह, आया है वहाँ से हैसियत ! लेकर तुम कहाँ के ऐसे धन्ना-सेठ हो। कोई आदमी द्वार पर आ जाय, तो एक लोटे पानी को तरस जाय। बड़ी हैसियत वाले बने हैं।

यह कह कर रंगीली वहाँ से उठ कर रसोई का प्रबन्ध करने चली गई। भुवनमोहन मुश्कुराता हुआ अपने कमरे में चला गया; और बाबू साहब मूछों पर ताव देते हुए बाहर आए कि मोटेराम को अन्तिम निश्चय सुना दें; पर उनका कहीं पता न था।

मोटेराम जी कुछ देर तक तो कहार की राह देखते रहे, जब उसके आने में बहुत देर हुई, तो उनसे न बैठा गया। सोचा, यहाँ बैठे-बैठे काम न चलेगा; कुछ उद्योग करना चाहिए। भाग्य के भरोसे यहाँ आड़ी दिए बैठे रहे, तो भूखों मर जायेंगे; यहाँ तुम्हारी दाल नहीं गलने की। चुपके से लकड़ी उठाई; और जिधर वह कहार गया था, उसी तरफ चले। बाजार थोड़ी ही दूर पर था, एक क्षण में जा पहुँचे। देखा तो बुढ़ा एक हलवाई की दुकान पर बैठा चिलम पी रहा है ! उसे देखते ही आपने बड़ी बेतकल्लुकी से कहा—अभी कुछ तैयार नहीं है क्या महारा, सरकार वहाँ बैठे विगड़ रहे हैं कि, जाकर सो गया या कहीं ताड़ी पीने लगा। मैं ने कहा—सरकार, यह बात नहीं, बुढ़ा आदमी है; आते ही

आने तो आएगा। बड़े विचित्र जीव हैं। न जाने इनके यहाँ कैसे नौकर टिकते हैं।

कहार—मुझे जोड़ के आज तक तो दूसरा टिका नहीं; और न टिकेगा। साल भर से तलब नहीं मिली। किसी की तलब नहीं देते। जहाँ किसी ने तलब माँगी; और लगे उसे ढाटने। बेचारा नौकरी छोड़ कर भाग जाता है। वह दोनों आदमी जो पङ्खा मल रहे थे, सरकारी नौकर हैं। सरकार से दो अर्दली मिले हैं न। इसी से पड़े हुए हैं। मैं भी सोचता हूँ जैसा तेरा ताना-बाना वैसी मेरी भरजी; दस साल कट गए हैं, साल-दो साल और इसी तरह कट जायेंगे।

मोटेराम—तो तुम्हीं अकेले हो ! नाम तो कई कहारों का लेते हैं।

कहार—वह सब इन दो-तीन महीनों के अन्दर आए और छोड़-छोड़ चले गए। यह अपना रोब जमाने को अभी तक उनका नाम जपा करते हैं। कहीं नौकरी दिलाइएगा, चलूँ ?

मोटेराम—अजी बहुत नौकरी हैं। कहार तो आजकल ढूँढ़े नहीं मिलते। तुम तो पुराने आदमी हो, तुम्हारे लिए नौकरी की क्या कमी। है वहाँ कोई ताज़ी चीज़ ? मुझसे कहने लगे खिचड़ी बनाइएगा या बाटी लगाइएगा ? मैं ने कह दिया—सरकार, बुढ़ा आदमी है, रात को उसे मेरा भोजन बनवाने में कष्ट होगा, मैं कुछ बाज़ार ही में खा लूँगा। इसकी आप-चिन्ता न करें। बोले, अच्छी बात है, कहार आपको दुकान पर मिलेगा। बोलो साह जी, कुछ

तर माल तैयार है ? लड्डू तो ताजे मालूम होते हैं । तोल दो एक सेर भर; आ जाऊँ वहीं ऊपर न ?

यह कह कर मोटेराम जी हलवाई की दुकान पर जा बैठे; और तर माल चखने लगे । खूब छक कर खाया । ढाई-तीन सेर चट कर गए । खाते जाते थे; और हलवाई की तारीफ़ करते जाते थे । साह जी, तुम्हारी दुकान का जैसा नाम सुना था, वैसा ही माल भी पाया । बनारस वाले ऐसे रसगुल्ले नहीं बना पाते । कलाकन्द अच्छी बनाते हैं । पर तुम्हारी उनसे दुरी नहीं । माल डालने से अच्छी चीज़ नहीं बन जाती, विद्या चाहिए ।

हलवाई—कुछ और लीजिए महाराज ! थोड़ी सी रवड़ी मेरी तरफ़ से लीजिए ।

मोटेराम—इच्छा तो नहीं है, लेकिन दे दो पाव भर !

हलवाई—पाव भर क्या लीजिएगा । चीज़ अच्छी है, आध सेर तो लीजिए ।

खूब इच्छापूर्ण भोजन करके पण्डित जी ने थोड़ी देर बाज़ार की सैर की, और नौ वजते-वजते मकान पर आए । यहाँ सन्नाटा-सा छाया हुआ था । एक लालटेन जल रही थी । आपने चबूतरे पर बिस्तर जमाया और सो गए ।

सबेरे अपने नियमानुसार कोई आठ बजे उठे तो देखा कि बाबू साहब टहल रहे हैं । इन्हें जगा देख कर वह पालागन कर बोले—महाराज, आप रात कहाँ चले गए ? मैं बड़ी रात तक आपकी राह देखता रहा । भोजन का सब सामान बड़ी देर तक रक्खा रहा । जब

हैं, तो वह अपना धन्य भाग मानते हैं; और सारा घर—छोटे से बड़े तक हमारी सेवा-सत्कार में मग्न हो जाता है। जहाँ अपना आदर नहीं, वहाँ एक क्षण भी ठहरना हमें असह्य है। जहाँ ब्राह्मण का आदर नहीं, वहाँ कल्याण नहीं हो सकता।

भाल०—महाराज, हमसे तो ऐसा अपराध नहीं हुआ।

मोटे०—अपराध नहीं हुआ ! और अपराध किसे कहते हैं ? अभी आप ही ने घर में जाकर कहा कि यह महाशय तीन सेर मिठाई चट कर गए। पक्की तोल ! आपने अभी खाने वाले देखे कहाँ ! एक बार खिलाइए तो आँखें खुल जायँ। ऐसे-ऐसे महान् पुरुष पड़े हुए हैं, जो पैसेरी भर मिठाई खा जाएँ; और डकार तक न लें। एक मिठाई खाने के लिए हमारी चिरौरी की जाती है, रुपये दिए जाते हैं। हम भिक्षुक नहीं हैं, जो आपके द्वार पर पड़े रहें। आपका नाम सुन कर आए थे; यह न जानते थे कि यहाँ मेरे भोजन के भी लाले पड़ेंगे। जाइए, भगवान् आपका कल्याण करें !

बाबू साहब ऐसा झँपे कि मुँह से बात न निकली। जिन्दगी भर में उन पर कभी ऐसी फटकार न पड़ी थी। बहुत बातें बनाई—आपकी चर्चा न थी, एक दूसरे ही महाशय की बात थी; लेकिन पण्डित का क्रोध शान्त न हुआ। वह सब कुछ सह सकते थे; पर अपने पेट की निन्दा न सह सकते थे। औरतों को रूप की निन्दा जितनी अप्रिय लगती है, उससे कहीं अप्रिय पुरुषों को अपने पेट की निन्दा लगती है। बाबू साहब मनाते तो थे; पर यह धड़का भी समाया हुआ था कि यह टिक न जायँ। उनकी कृपणता का परदा

खुल गया था, अब इसमें सन्देह न था। उस परदे को ढाँकना जरूरी था। अपनी कृपणता को छिपाने के लिए उन्होंने कोई बात उठा न रखी थी; पर होने वाली बात होकर रही। पछता रहे थे कि कहाँ से घर में इसकी बात कहने गया, और कहा भी तो उच्च स्वर में। यह दुष्ट भी कान लगाए सुनता रहा; किन्तु अब पछताने से क्या हो सकता था? न जाने किस मनहूस की सूरत देखी थी कि यह विपत्ति गले पड़ी। अगर इस वक्त यहाँ से रुष्ट होकर चला गया, तो वहाँ जाकर बदनाम करेगा; और मेरा सारा कौशल खुल जायगा। अब तो इसका मुँह वन्द कर देना ही पड़ेगा।

यह सोच-विचार करते हुए वह घर में जाकर रँगीलीबाई से बोले—इस दुष्ट ने हमारी तुम्हारी बातें सुन लीं। रुठ कर चला जा रहा है।

रँगीली—जब तुम जानते थे कि द्वार पर खड़ा है, तो धीरे से क्यों न बोले?

भालू—विपत्ति आती है तो अकेले नहीं आती। यह क्या जानता था कि वह द्वार पर कान लगाए खड़ा है?

रँगीली—न जाने किस का मुँह देखा था?

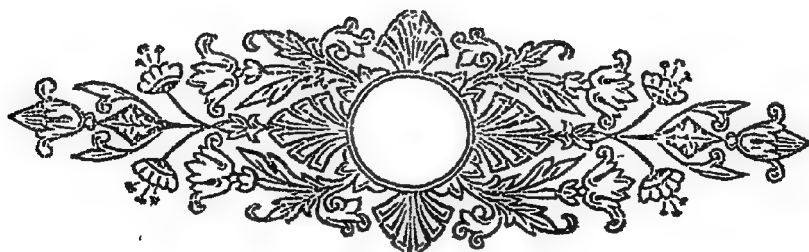
भालू—वही दुष्ट सामने लेटा हुआ था। जानता तो उधर ताकता ही नहीं। अब तो इसे कुछ दे दिला कर राजी करना पड़ेगा।

रँगीली—उँह, जाने भी दो। जब तुम्हें वहाँ विवाह ही नहीं करना है, तो क्या परवाह है? जो चाहे समझे, जो चाहे कहे।

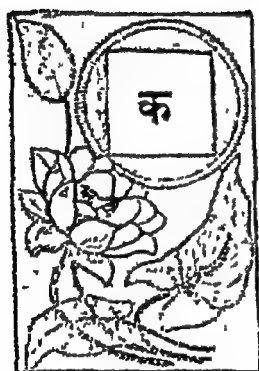
भालू—यों जान न वचेगी। लाओ दस रुपये विदाई के

बहाने दे दू। ईश्वर फिर इस मनहूस की सूरत न दिखाए। रँगौली ने बहुत अछताते-पछताते दस रुपये निकाले, और बाबू साहब ने उन्हें ले जाकर पण्डित जी के चरणों पर रख दिया। पण्डित जी ने दिल में कहा—धत्तरे मक्खी चूस की! ऐसा रगड़ा कि याद ही करोगे।^१ तुम समझते होगे कि दस रुपये देकर इसे उल्लू बना लूँगा। इस फेर में न रहना। यहाँ तुम्हारी नस-नस पहचानते हैं। रुपये जेब में रख लिए, और आशीर्वाद देकर अपनी राह ली।

बाबू साहब बड़ी देर तक खड़े सोच रहे थे—मालूम नहीं अब भी मुझे कृपण ही समझ रहा है, या परदा ढक गया। कहीं ये रुपये भी तो पानी में नहीं गिर पड़े !!



चौथा परिच्छेद



ल्याणी के सामने अब एक विपन्न समस्या आ खड़ी हुई। पति के देहान्त के बाद उसे अपनी दुरावस्था का यह पहला और बहुत ही कड़वा अनुभव हुआ। दरिद्र विधवा के लिए इससे बड़ी और क्या विपत्ति हो सकती है कि जवान वेदी सिर पर सवार हो ? लड़के नङ्गे पांव पढ़ने जा सकते हैं, चौका-वर्तन भी अपने हाथ से किया जा सकता है, रुखा-सूखा खाकर निर्वाह किया जा सकता है, भोपड़े में दिन काटे जा सकते हैं; लेकिन युवती कन्या घर में नहीं बिठाई जा सकती। कल्याणी को भालचन्द्र पर ऐसा क्रोध आता था कि स्वयं जाकर उसके मुँह में कालिख लगाऊँ, सिर के बाल नोच लूँ। कहूँ, तू अपनी बात से फिर गया, तू अपने बाप का वेटा नहीं। पण्डित मोटेराम ने उनकी कपट-लीला का नग्न वृत्तान्त सुना दिया था।

वह इसी क्रोध में भरी बैठी थी कि कृष्णा खेलती हुई आई, और बोली—कै दिन में बारात आएगी; अम्माँ ! पण्डित जी तो आ गए।

कल्याणी—बारात का सपना देख रही है क्या ?

कृष्णा—वही चन्दर तो कह रहा है कि दो-तीन दिन में बारात आएगी । क्या न आएगी अम्माँ ?

कल्याणी—एक बार तो कह दिया, सिर क्यों खाती है ?

कृष्णा—सब के घर तो बारात आ रही है, हमारे यहाँ क्यों नहीं आती ?

कल्याणी—तेरे यहाँ जो बारात लाने वाला था, उसके घर में आग लग गई ।

कृष्णा—सच अम्माँ ? तब तो सारा घर जल गया होगा । कहाँ रहते होंगे ? बहिन कहाँ जाकर रहेगी ?

कल्याणी—अरे पगली, तू तो बात ही नहीं समझती । आग नहीं लगी । वह हमारे यहाँ व्याह न करेगा ।

कृष्णा—यह क्यों अम्माँ ? पहले तो वहाँ ठीक हो गया था न ?

कल्याणी—बहुत से रुपये माँगता है । मेरे पास उसे देने को रुपये नहीं हैं ।

कृष्णा—क्या बड़े लालची हैं अम्माँ ?

कल्याणी—लालची नहीं तो और क्या है ! पूरा कसाई, निर्देई, दगाबाज !

कृष्णा—तब तो अम्माँ बहुत अच्छा हुआ कि उसके घर बहिन का व्याह नहीं हुआ । बहिन उनके साथ कैसे रहती । यह तो ख़श होने की बात है अम्माँ, तुम रज्ज क्यों करती हो ?

कल्याणी ने पुत्री को स्नेहमय दृष्टि से देखा । इसका कथन कितना सत्य है । भोले शब्दों में समस्या का कितना मार्मिक निरूपण है । सचमुच यह तो प्रसन्न होने की बात है कि ऐसे कुपात्रों से सम्बन्ध नहीं हुआ, रज की कोई बात नहीं । ऐसे कुमानुसों के बीच में बेचारी निर्मला की न जाने क्या गति होती ? अपने नसीबों को रोती । ज़रा सा घी दाल में अधिक पड़ जाता, तो सारे घर में शोर मच जाता; ज़रा खाना ज्यादा पक जाता, तो सास दुनिया सिर पर उठा लेती । लड़का भी ऐसा ही लोभी है । बड़ी अच्छी बात हुई, नहीं तो बेचारी को उन्न भर रोना पड़ता । कल्याणी यहाँ से टठी, तो उसका हृदय हलका हो गया था ।

लेकिन विवाह तो करना ही था, और हो सके तो इसी साल; नहीं तो दूसरे साल फिर नए सिरे से तैयारियाँ करनी पड़ेंगी । अब अच्छे घर की ज़रूरत न थी, अच्छे वर की ज़रूरत न थी । अभागिनी को अच्छा घर-वर कहाँ मिलता है; अब तो किसी भौँति सिर का बोझ उतारना था, किसी भौँति लड़की को पार लगाना था—उसे कुँएँ में भौँकना था । वह रूपवती है, गुणशीला है, चतुर है, कुलीना है, तो हुआ करे ; दहेज नहीं तो उसके सारे गुण दोष हैं । दहेज हो तो सारे दोष, गुण हैं । प्राणी का कोई मूल्य नहीं, केवल दहेज का मूल्य है । कितनी विषम भाग्य-लीला है ?

कल्याणी का दोष कुछ कम न था । अबला और विधवा होना ही उसे दोषों से मुक्त नहीं कर सकता । उसे अपने लड़के

अपनी लड़कियों से कहीं प्यारे थे । लड़के हल के बैल हैं, भूसे-खली पर पहला हक्क उनका है, उनके खाने से जो बचे वह गायों का ! मकान था, कुछ नक़्कद था, कई हजार के गहने थे ; लेकिन उसे अभी दो लड़कों का पालन-पोषण करना था, उन्हें पढ़ाना-लिखाना था, एक कन्या और भी चार-पाँच साल में विवाह करने के योग्य हो जायगी । इसलिए वह कोई बड़ी रक़म दहेज में न दे सकती थी । आखिर लड़कों को भी तो कुछ चाहिए । वे क्या समझेंगे कि हमारा भी कोई बाप था ।

पण्डित मोटेराम को लखनऊ से लौटते पन्द्रह दिन बीत चुके थे । लौटने के बाद दूसरे ही दिन से वह घर की खोज में निकले थे । उन्होंने प्रण किया था, मैं इन लखनऊ वालों को दिखा दूँगा कि संसार में तुम्हीं अकेले नहीं हो, तुम्हारे ऐसे और कितने पड़े हुए हैं । कल्याणी रोज़ दिन गिना करती थी । आज उसने उन्हें पत्र लिखने का निश्चय किया ; और कलम दावात लेकर बैठी ही थी कि पण्डित मोटेराम ने पदार्पण किया ।

कल्याणी—आइए पण्डित जी, मैं तो आपको खत लिखने जा रही थी । कब लौटें ?

मोटेराम—लौटा तो प्रातःकाल ही था; पर उसी समय एक सेठ के यहाँ से निमन्त्रण आ गया । कई दिन से तर माल न मिले थे । मैंने कहा कि लगे हाथ यह काम भी निपटाता चलूँ । अभी उधर ही से लौटा आ रहा हूँ, कोई पाँच सौ ब्राह्मणों की पङ्क्त थी ।

कल्याणी—कुछ कार्य भी सिद्ध हुआ, या रास्ता ही नापना पड़ा ?

मोटे०—कार्य क्यों न सिद्ध होता, भला यह भी कोई बात है ? पाँच जगह घातचीत कर आया हूँ। पाँचों की नक़ल लाया हूँ। उसमें से आप जिसे चाहें पसन्द करें। यह देखिए, इस लड़के का बाप डाक के सेग्रे में १००) महीने का नौकर है। लड़का अभी कॉलेज में पढ़ रहा है। मगर नौकरी ही का भरोसा है, घर में कोई जायदाद नहीं। लड़का होनहार मालूम होता है। खानदान भी अच्छा है। २०००) में बात तय हो जायगी। माँगते तो वह तीन हजार हैं।

कल्याणी—लड़के के और भी भाई हैं ?

मोटे०—नहीं, मगर तीन बहिनें हैं; और तीनों कारी ! माता जीवित है। अच्छा, अब दूसरी नक़ल देखिए। यह लड़का रेल के सेग्रे में ५०) महीना पाता है। माँ-बाप नहीं हैं। बहुत ही रूपवान्, सुशील और शरीर से खूब दृष्ट-पुष्ट, कसरती जवान है। मगर खानदान अच्छा नहीं—कोई कहता है, माँ नाइन थी, कोई कहता है ठकुराइन थी। बाप किसी रियासत में मुख्तार थे। घर पर थोड़ी सी ज़मींदारी है; मगर उस पर कई हजार का कर्ज़ा है। यहाँ कुछ लेना-देना न पड़ेगा। उम्र कोई बीस साल होगी।

कल्याणी—खानदान में दारा न होता, तो मञ्जूर कर लेती। देख कर तो भक्खी नहीं निगली जाती।

मोटे०—मुझे तो दो वर पसन्द हैं। एक वह जो रेलवर्ड में है, और दूसरा यह जो छापेखाने में काम करता है।

कल्याणी—मगर पहले के तो खानदान में आप दोष बताते हैं।

मोटे०—हाँ, यह दोष तो है। तो छापेखाने वाले ही को रहने दीजिए।

कल्याणी—यहाँ एक हजार देने को कहाँ से आएगा ? एक हजार तो आप का अनुमान है, शायद वह और भी मुँह फैलाए। आप तो घर की दशा देख ही रहे हैं, भोजन मिलता जाय, यही गनीमत है। रुपये कहाँ से आएँगे। जमींदार साहब चार हजार सुनाते हैं, डाक बाबू भी दो हजार का सवाल करते हैं। इनको जाने दीजिए। वस, वकील साहब ही बच रहते हैं; पैतीस साल की उम्र भी कुछ ऐसी ज्यादा नहीं, इन्हीं को क्यों न रखिए।

मोटेराम—आप खूब सोच-विचार लो, मैं तो आप की मर्जी का तावेदार हूँ। जहाँ कहिएगा, वहाँ जाकर टीका कर आऊँगा। मगर हजार डेढ़-हजार का मुँह न देखिए, छापेखाने वाला लड़का रत्न है। उसके साथ कन्या का जीवन सफल हो जावेगा। जैसी यह रूप और गुण की पूरी है, वैसा ही लड़का भी सुन्दर और सुशील है।

कल्याणी—पसन्द तो मुझे भी यही है; महाराज ! पर रुपये किसके घरसे आएँ ? कौन देने वाला है ? है कोई ऐसा दानी ? खाने

वाले तो खा-पीकर चम्पत हुए। अब किसी की सूरत भी नहीं दिखाई देती; बल्कि और मुझसे बुरा मानते हैं कि हमें निकाल दिया। जो बात अपने बस के बाहर है, उसके लिए हाथ ही क्यों फैलाऊँ। सन्तान किसको प्यारी नहीं होती? कौन उसे सुखी नहीं देखना चाहता; पर जब अपना क्लबू भी हो। आप ईश्वर का नाम लेकर वकील साहब को टीका कर आइए। आयु कुछ अधिक है; लेकिन मरना-जीना विधि के हाथ है। पैतीस साल का आदमी बुढ़ा नहीं कहलाता। अगर लड़की के भाग्य में सुख भोगना बदा है, तो जहाँ जायगी सुखी रहेगी; दुख भोगना है, तो जहाँ जायगी दुख भेलेगी। हमारी निर्मला को बच्चों से प्रेम है। उनके बच्चों को अपना समझेगी। आप शुभ-मुहूर्त देख कर टीका कर आएँ !!



पाँचवाँ परिच्छेद



मैला का विवाह हो गया । ससुराल आ गई ।
वकील साहव का नाम था मुन्शी तोता-
राम । सॉवले रङ्ग के मोटे-ताजे आदमी
थे । उम्र तो अभी चालीस से अधिक न
थी, पर वकालत के कठिन परिश्रम ने सिर
के बाल पका दिए थे । व्यायाम करने का

उन्हें अवकाश न मिलता था । यहाँ तक कि कभी कहीं घूमने
भी न जाते, इसलिए तोंद निकल आई थी । देह के स्थूल होते
हुए भी आए दिन कोई न कोई शिकायत होती रहती !
मन्दाग्नि और बवासीर से तो उनका चिरस्थायी सम्बन्ध था ।
अतएव बहुत फूँक-फूँक कर कदम रखते थे । उनके तीन लड़के
थे । बड़ा मन्साराम सोलह वर्ष का था, मँमला जियाराम बारह
और छोटा सियाराम सात वर्ष का । तीनों अङ्गरेजी पढ़ते थे । घर
में वकील साहव की विधवा बहिन के सिवा कोई औरत न थी ।

वही घर की मालिकिन थीं । उनका नाम था रुक्मिणी; और अवस्था पचास से ऊपर थी । ससुराल में कोई न था । स्थायी रीति से यहीं रहती थीं ।

तोताराम दम्पति-विज्ञान में कुशल थे । निर्मला को प्रसन्न रखने के लिए उनमें जो स्वाभाविक कमी थी, उसे वह उपहारों से पूरी करनी चाहते थे । यद्यपि बहुत ही मितव्ययी पुरुष थे; पर निर्मला के लिए कोई न कोई तोहफा रोज़ लाया करते । मौके पर धन की परवाह न करते थे । खुद कभी नाश्ता न करते थे, लड़के के लिए थोड़ा-थोड़ा दूध आता था; पर निर्मला के लिए मेवे, मुरब्बे, मिठाइयाँ—किसी चीज़ की कमी न थी । अपनी जिन्दगी में कभी सैर-तमाशे देखने न गए थे; पर अब छुट्टियों में निर्मला को सिनेमा, सर्कस, थियेटर दिखाने ले जाते । अपने बहुमूल्य समय का थोड़ा सा हिस्सा उसके साथ बैठ कर ग्रामोफोन बजाने में भी व्यतीत किया करते थे ।

लेकिन निर्मला को न जाने क्यों तोताराम के पास बैठने और हँसने-बोलने में सङ्कोच होता था । इसका कदाचित् यह कारण था कि अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर झुका कर, देह चुरा कर, निकलती थी ; अब उसकी अवस्था का एक आदमी उसका पति था । वह उसे प्रेम की वस्तु नहीं, सम्मान की वस्तु समझती थी । उनसे भागती फिरती, उनको देखते ही उसकी प्रफुल्लता पलायन कर जाती थी !

वकील साहब को उनके दम्पति-विज्ञान ने सिखाया था कि

युवती के सामने खूब प्रेम की बातें करनी चाहिए—दिल निकाल कर रख देना चाहिए। यही उसके वशीकरण का मुख्य मन्त्र है। इसलिए वकील साहब अपने प्रेम-प्रदर्शन में कोई कसर न रखते थे; लेकिन निर्मला को इन बातों से घृणा होती थी। वही बातें, जिन्हें किसी युवक के मुख से सुन कर उसका हृदय प्रेम से उन्मत्त हो जाता, वकील साहब के मुँह से निकल कर उसके हृदय पर शर के समान आघात करती थीं! उनमें रस न था, उल्लास न था, उन्माद न था, हृदय न था, केवल बनावट थी, धोखा था; और था शुष्क, नीरस शब्दाडम्बर! उसे इत्र और तेल बुरा न लगता, सैर-तमाशे बुरे न लगते, बनाव-सिंगार भी बुरा न लगता; बुरा लगता था केवल तोताराम के पास बैठना। वह अपना रूप और यौवन उन्हें न दिखाना चाहती थी, क्योंकि वहाँ देखने वाली आँखें न थीं। वह उन्हें इन रसों का आस्वादन करने के योग्य ही न समझती थी। कली प्रभात-समीर ही के स्पर्श से खिलती हैं। दोनों में समान सारस्य है। निर्मला के लिए वह प्रभात-समीर कहाँ थी?

पहला महीना गुज़रते ही तोताराम ने निर्मला को अपना खजाना बना लिया। कचहरी से आकर दिन भर की कमाई उसे दे देते। उनका खयाल था कि निर्मला इन रुपयों को देख कर फूली न समाएगी। निर्मला बड़े शौक से इस पद का काम अजाम देती। एक-एक पैसे का हिसाब लिखती, अगर कभी रुपये कम मिलते, तो पूछती—आज कम क्यों हैं? गृहस्थी के सम्बन्ध में उनसे

सब कुछ भूल कर फिर माता के पास दौड़ा जाता था। शरारत के लिये सजा पाना तो उसकी समझ में आता था; लेकिन मार खाने पर चुमकारा जाना उसकी समझ में न आता था। मातृ-प्रेम में कठोरता होती थी; लेकिन मृदुलता से मिली हुई। इस प्रेम में करुणा थी; पर वह कठोरता न थी, जो आत्मीयता का गुप्त सन्देश है। स्वस्थ अङ्ग की परवाह कौन करता है ? लेकिन वही अङ्ग जब किसी वेदना से टपकने लगता है, तो उसे ठेस और धक्के से वचाने का यत्न किया जाता है। निर्मला का करुण रोदन बालक को उसके अनाथ होने की सूचना दे रहा था। वह बड़ी देर तक निर्मला की गोद में बैठा रोता रहा और रोते-रोते सो गया। निर्मला ने उसे चारपाई पर सुलाना चाहा; तो बालक ने सुषुप्तावस्था में अपनी दोनों कोमल बांहें उसकी गर्दन में डाल दीं; और ऐसा चिपट गया, मानो नीचे कोई गढ़ा है। शङ्का और भय से उसका मुख विकृत हो गया। निर्मला ने फिर बालक को गोद में उठा लिया, चारपाई पर न सुला सकी। इस समय बालक को गोद में लिए हुए उसे वह तुष्टि हो रही थी, जो अब तक कभी न हुई थी। आज पहली बार उसे वह आत्म-वेदना हुई, जिसके बिना आँखें नहीं खुलतीं, अपना कर्तव्य-मार्ग नहीं सूझता। वह मार्ग अब दिखाई देने लगा।



बूढ़ा पारिच्छेद



स दिन अपने प्रगाढ़ प्रणय का सबल प्रमाण देने के बाद मुन्शी तोताराम को आशा हुई थी कि निर्मला के मर्मस्थल पर मेरा सिक्का जम जायगा; लेकिन उनकी यह आशा लेशमात्र भी पूरी न हुई; बल्कि पहले तो वह कभी-कभी उनसे हँस कर बोला भी करती थी, अब बच्चों ही के लालन-पालन में व्यस्त रहने लगी। जब घर में जाते, बच्चों को उसके पास बैठे पाते। कभी देखते कि उन्हें खिला रही है, कभी कपड़े पहना रही है, कभी कोई खेल खेल रही है, और कभी कोई कहानी कह रही है। निर्मला का वृषित हृदय प्रणय की ओर से निराश होकर इस अवलम्ब ही को गनीमत समझने लगा। बच्चों के साथ हँसने-बोलने में उसकी मातृ-कल्पना तृप्त होती थी। पति के साथ हँसने-बोलने में उसे जो सङ्कोच, जो अरुचि, तथा जो अनिच्छा होती थी, यहाँ तक कि वह उठकर भाग जाना चाहती; उसके बदले यहाँ बालकों के सच्चे, सरल स्नेह से चित्त प्रसन्न होजाता था। पहले मन्साराम उसके

